# अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत ऐतिहासिक एकाङ्की

देवराज[233]

**न मृता म्रियते न मरिष्यति वा।**

**सुरवागमृता सुखदा वरदा।**

**द्विषतां नियतिं रचयिष्यति वा। - श्रुतिम्भरा**

संस्कृत को मृत भाषा कहने वालों को ललकारने वाले, उत्तरप्रदेश के द्रोणीपुर ग्राम में उत्पन्न जननी अभिराजी देवी की स्नेहाभिषिक्त ऊर्जा से लालित-पोषित, संस्कृत-भाषा की सेवा में अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित करने वाले हि. प्र. विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृत-विभागाध्यक्ष एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति सम्प्रति सेवानिवृत्त, स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत नाट्य-साहित्य की अग्रणी पंक्ति में अभिराज राजेन्द्र मिश्र का नाम चित्रित करना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

संस्कृत ऐसी समृद्ध भाषा है, जिसके अनन्त कोश से विज्ञान, टेक्नोलॉजी एवं अन्य विभिन्न क्षेत्रों के लिए नूतन शब्दों का निर्माण किया जा रहा है और एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की जा रही है। संस्कृत की इस परम्परा में अद्यतन कवियों का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपने लेखन से यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृत एक जीवित भाषा है। उसमें भी विकास की अनन्त सम्भावनाएँ हैं और वह चिर-पुरातन होती हुई भी चिर-नवीन होने की क्षमता रखती है।

अभिराज मिश्र कहते हैं कि यह भाषा लोक-मानस को संस्पृष्ट करके जन-जीवन को उसी प्रकार आच्छादित कर सकती है, जिस प्रकार आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ।

भट्टमथुरानाथ शास्त्री तथा पं. क्षमाराव के पश्चात् नाट्यसाहित्य में नवीन भूमि का उद्घात करने वाले नाट्यकारों में अभिराज राजेन्द्र मिश्र निश्चय ही शीर्षस्थ हैं। वह नाट्य-साहित्य की उन विभूतियों में से हैं जो अपनी लेखनी के स्नेह से समस्त वातावरण को परम पावन बना देते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत नाट्य-साहित्य में अभिराज राजेन्द्र मिश्र का अवदान अपनी विपुलता, विविधता, नवोन्मेष, सौन्दर्यदृष्टि तथा भावसृष्टि के कारण महनीय है।

स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत लेखकों में अभिराज राजेन्द्र मिश्र ही ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने संस्कृत-वाङ्मय की तीनों धाराओं काव्य, नाट्य और कथा का समान रूप से पल्लवन किया है। अभिराज मिश्र ने दो महाकाव्य, बारह खण्डकाव्य, आठ नवगीत-संकलन, तीन कथासंग्रह और छः नाट्य कृतियों का प्रकाशन कर अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय का भण्डार समृद्ध किया है। नाट्य क्षेत्र में उन्होंने प्रमद्वरा और विद्योत्तमा नाटिका के साथ ही नाट्यपंचगव्यम्, अकिञ्चनकांचनम्, नाट्यपञ्चामृतम्, चतुष्पथीयम्, रूपरुद्रीयम्, नाट्यसप्तपद्म इन छः एकाङ्की संग्रह में तैंतीस एकाङ्किकयों की सर्जना की है। उनकी रूपविंशतिका तथा नाट्यनवग्रहम् अभी भी अप्रकाशित रचनाएँ हैं। नाट्यनवरत्नम् (2008) तथा नाट्यनवार्णनम् (2010) के अठारह नये एकांकियों को जोड़कर प्रो. मिश्र के एकांकियों की संख्या 80 हो जाती है।

समीक्षात्मक दृष्टि से मिश्र के एकाङ्किकयों को पौराणिक, रामायण-महाभारतमूलक, ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक, हास्यपरक, सामाजिक शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है। अभिराज मिश्र के ऐतिहासिक एकाङ्किकयों को कालक्रमानुसार निश्चित करने का प्रयास किया जा रहा है -

[233] सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हि.प्र. विश्वविद्यालय, क्षेत्रीय केन्द्र, धर्मशाला, जिला काँगड़ा, ह.प्र. 176213

- अकिञ्चनकांचनम् दिसम्बर 1974.
- प्रीतिनिर्यातनम् (नाट्यपञ्चामृतम्) अप्रैल 1979
- समर्चितमृत्तिकम् (नाट्यपञ्चामृतम्) मई 1979
- कुटुम्बरक्षणम् (रूपरूद्रीयम्) 1986.
- राजराजौदार्यम् (रूपरूद्रीयम्) 1986.
- को विजयते नैव ज्ञातम् (रूपरूद्रीयम्) 1986.
- रक्ताभिषेकम् (रूपरूद्रीयम्) 1986.
- पंच सी न मी (नाट्यपंचामृतम्) अगस्त 1986.
- रूपमती (नाट्यपंचामृतम्) मई 1991.
- देहलीपरिदेवनम् सितम्बर 1991.

ऐतिहासिक एकाङ्की-संग्रह में सर्वप्रथम **"अकिञ्चनकांचनम्"** एकाङ्की माना जा सकता है। इसका मूल कथानक यूनानी कथानक पर आधारित है। इस एकाङ्की में यूनान देश का एक राजा कंचनकामिनी में अनुरक्त हो जाता है। उसकी यह सदैव प्रबल इच्छा रहती है कि येन-केन प्रकारेण अपने कोष की अधिक से अधिक पूर्ति की जाए। वह इस इच्छा पूर्ति से अपनी पुत्री तक को स्वर्णमयी बना देता है। उसके इस प्रयास से उसका चारित्रिक पतन हो जाता है। एकाङ्की के अन्त में पश्चाताप के द्वारा भविष्य में स्वर्णलोभ का परित्याग[234] करके वह प्रजापालन में तत्पर हो जाता है।

**"प्रीतिनिर्यातम्"** एकाङ्की में जैनाबाद की सुन्दरी नर्तकी जैनाबाई और मुगल बादशाह शहंशाह आलमगीर औरंगजेब की प्रीतिकथा निबद्ध की गई है। इस्लाम का कट्टर अनुयायी तथा मदिराचषक का स्पर्श तक न करने वाला औरंगजेब अपनी प्राणातिप्रिय मलिका की खुशी के लिए मदिरा का जाम होंठों पर रख लेता है। परन्तु पीने से पहले ही वह जाम जैनाबाई के हाथ की चोट खाकर गिरा दिया जाता है[235], क्योंकि वह अपने प्रति शहंशाह के प्रेम की परीक्षा ले रही थी।

**"कुटुम्बरक्षणम्"** में अलाउद्दीन के आक्रमण से अपने कुटुम्ब की रक्षा करते हुए राव हम्मीर सिंह और महिमाशाह के महान् चरित्र का वर्णन किया गया है। इसमें दिल्ली का शासक अलाउद्दीन रणथम्भौर पर राव हम्मीर सिंह की अनुपस्थिति में आक्रमण कर देता है। राव हम्मीर सिंह लौटकर अपनी रानियों को जौहर करने की आज्ञा देता है और स्वयं मुगल सैनिक महिमाशाह के साथ मृत्यु पर्यन्त युद्ध करने के लिए निकल पड़ता है। महिमाशाह भी अपने हाथों से पहले अपने परिवार का वध कर देता है।[236] तत्पश्चात् वह केसरिया वस्त्र पहनकर युद्धभमि में लड़ने के लिए जाता है।

**"राजराजौदार्यम्"** एकाङ्की में चोलवंश का प्रसिद्ध सम्राट् राजराजेश्वर की उदारता एवं विनम्रता का वर्णन किया गया है। चोलवंश का प्रसिद्ध सम्राट वृहदीश्वर मन्दिर पर स्तूपाकार पत्थर लगाने के लिए स्वयं पणार्गल ग्राम की बुढ़िया आलकी के पास शिलाखण्ड लाने के लिए जाता है। वह चाहता तो बलपूर्वक सेना के साथ उस बूढ़ी आलकी से शिलाखण्ड ले सकता था, परन्तु वह जब उसके पास एक याचक के रूप में जाकर याचना करता है, तब बूढ़ी आलकी कहती है -

---

[234]. अकिञ्चनकाञ्चनम्, पृ. 28

[235]. नाट्यपञ्चामृतम्, पृ. 45

[236]. महिमाशाहोऽभ्यन्तरं गत्त्वा प्रविशति गृहाङ्गणे पुञ्जीभूतं निखिलमपि कुटुम्ब स्वनग्नखड्गेन वधिक इव द्राक घातयति। नेपथ्ये दारकाणां चीत्कारध्वनिः श्रूयते। महिमाशाहो रक्तरञ्जित खड्गं दक्षिणहस्ते निधाय सझम्पं बहिरायाति। सर्वे साश्चार्यं ससम्भ्रमं तं पश्यन्ति। रूपरूद्रीयम्, पृ. 67-68

आलकी - (सस्मितम्) महाराज! राज्ञ एव सम्पत्तिं प्रजा भुनक्ति। निखिलाऽपि चोलावनी भवदधिकारे तिष्ठति। का कथाऽस्य शिलाखण्डस्य।

राजराजः - मातस्तत्कथं रक्षिणौ निवारितौ त्वया?

आलकी - (सवात्सल्यम्) पुत्रक! केवलं त्वददर्शनार्थम्। मम एकल एव पुत्रश्चोलसैन्ये स्थापितः युद्धभूमौ वीरगतिमवाप। ततः प्रभृत्ति पुत्रविरहे निदाघपुष्पकरिणीव शनकैः शुष्यानि। कः मां प्रवेशयेद्राजधान्यम्? शिलाखण्डमहिम्नैव सौवर्णोऽयमवसरः सम्प्राप्तो मया।[237]

इस प्रकार वह बूढ़ी आलकी के पास अपनी विनम्रता व उदारता का परिचय देता है।

**"को विजयते नैव ज्ञातम्"** एकाङ्की में चोल तथा मालव निवासी कलाकारों के विवाद का चित्रण किया गया है। इसमें मालव देश का कुविन्द (जुलाहा) अपने कवित्त्व को सिद्ध करता हुआ मूर्ख न होने का प्रमाण देता है। तत्पश्चात् चोल देश का स्थापतिअपनी ज्योतिर्विद्या से भविष्य को देखकर कहता है कि उसने वृहदीश्वर मन्दिर के छत्त पर टोपीधारी असभ्य पुरुष को उत्कीर्ण किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि एक हजार वर्ष बाद इस देश पर इसी वेशभूषा के लोग शासन करेंगे।[238] अन्त में निर्णायक समिति द्वारा यह निर्णय सुनाया जाता है कि **कौन जीता ज्ञान नहीं**।

**"रक्ताभिषेकम्"** एकाङ्की खालिस्तान की समस्या पर चित्रित किया गया है। इसमें सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह के आत्मोत्सर्ग को प्रस्तुत किया गया है।[239] इसके द्वितीय दृश्य में सिक्खों के चौथे गुरु रामदास, पाँचवें गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर के संवाद से सिक्खों के शौर्य, पराक्रम तथा उनके सद्गुणों का परिचय प्रस्तुत होता है। भगतसिंह व उधम सिंह के संवाद से भारत की अखण्डता का चित्रण किया हुआ है।[240] इस एकाङ्की में देश की अखण्डता के लिए श्रीमती इन्दिरागान्धी के आत्मबलिदान का भी वर्णन किया गया है। वह भारत राष्ट्र की बलिवेदी पर अपने प्राणों को समर्पित करते हुए कहती है - मुझे चिन्ता नहीं कि मैं जीवित रहूँ या न रहूँ। जब मेरी जान जाएगी तो मेरे खून का एक-एक कतरा भारत को जीवित रखेगा और मजबूती देगा।[241]

**"पंच सी न मी"** एकाङ्की मालव नरेश भोजराज की सभा में घटित होता है। भोजराज की सभा में सभापण्डित के साथ एक मायावी पण्डित शास्त्रार्थ करने के लिए आता है। वह इस शर्त पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार होता है कि विजयी के हाथों पराजित की मृत्यु। लेकिन एकाङ्की के अन्त में उस मायावी का पर्दाफाश हो जाता है[242] और राजपण्डित उसे क्षमा कर देता है।

**"रूपमती"** एकाङ्की में राजमहिषी रूपमती अपनी सखी मदिरा का हाथ शहंशाह बाजबहादुर के मित्र आदिलखान को सौंप देती है। इस एकाङ्की में उनके प्रणय प्रसंग का चित्रण किया हुआ है।

**"देहलीपरिदेवनम्"** प्रतीकात्मक ऐतिहासिक एकाङ्की है। इसमें भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली की आत्मकथा है। इस कथा को दिल्ली स्वयं वर्णित करते हुए कहती है कि किस प्रकार साम्प्रदायिकता को जामा पहनाने वाले आपस में मन्दिर, मस्जिद के लिए लड़ रहे हैं -

---

237. रूपरूद्रीयम्, पृ. 78

238. वही, पृ. 99

239. गुरुगोविन्दसिंह पुत्र हेमेन्द्र को धर्म की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हुए कहते हैं कि - गोविन्दसिंहः - वत्स हेमेन्द्र! धर्मान्धस्यालमगीरस्यात्याचारेभ्योः हिन्दुत्वं मानवताञ्च संरक्षितु मया स्वशिष्याः (सिक्खा) सैनिकाकृताः। एकैकस्मात् हिन्दुगृहात् एकैकस्या हिन्दुजनन्या सोऽहम धर्मरक्षणार्थं एकमेकं पुत्रं याचितवान। अनेक प्रकारेण मया धर्मो रक्षितः। वत्स हेमेन्द्र! प्रत्येकसिक्खो मूलतो हिन्दूरस्ति। यथा भूषणं वस्तुतः सुवर्णमेव तथैवं सिक्खोऽपि हिन्दुरेव। वही, पृ. 104

240. हेमेन्द्रः - महाराज! तत्किं खालिस्तानयाचना न युक्तियुक्ता? (अकस्मादेव आंग्लवेषधरौ युवकौ प्रविशतः) उधमसिंहः भगतसिंहः - फलं समग्रेणापि पञ्चनदराज्येन भोक्तव्यं भविष्यति। वही, पृ. 105

241. वही, पृ. 106

242. नाट्यसप्तपद्म, पृ. 40-41

देहली - (नेपथ्ये श्रूयते समराक्रन्दः। चीत्कारक्रन्दन ध्वनिः)

इमं ध्वनिं शृणोषि? एते सन्ति धर्मार्था आक्रान्तारः। एते खड्गबलेन धर्मं स्थापयन्ति। मन्दिराणि ध्वंसित्वा मस्जिदीकुर्वन्ति यतोहि परमात्मा मस्जिदं विधाय नान्यत्र कोऽपि निवसति। एते मृतक शवं दुकुलैः संच्छाद्य गीतैर्वाद्यैस्तं परितोषयन् समर्चन्ति। परन्तु परमात्मप्रतीकभूतां मूर्तिं घनाघातैः खण्डयन्ति। आत्मनो धर्मरक्षकान् मन्यन्ते। इतराञ्जनाम् काफिरान् घोषयन्ति। पश्यं तावतेषां पैशाचिकं कर्म। इदं जिनमन्दिरं तैरेव मस्जिदीकृतम्। अयं स्तम्भोऽपि तैरेव कुतुबमीनारनाम्नाप्रख्यापितः।

वह स्वतन्त्र भारत की राजनीति का कच्चा चिट्ठा खोलती है। कालपुरुषः - मातः शासनादेशानुवर्त्महम्। सेवाधर्मः परमगहन इत्यवैति भवसि। किङ्करत्वात्किं करोमि? विवशोऽस्मि। बालकानां कृतेऽत्र कश्चिदौषधालयो मया निर्मातव्यः। तदनुजानीहि मां कार्यमारब्धुम्।

देहली - औषधालयो निर्माणीयो भवेदायुधालयो वा। इतः प्रभृति नाहं स्वशरीरं स्प्रष्टुमनुमंस्ये। गच्छ सूचय संसदं यत् विक्षिप्ता देहली स्वयमाहैवम्। इदानीं यावत् शतमिता आलया निर्मिता लोकोपकाराय। कः खलूपकारस्साधितः शासनेन? औषधालयाः केवलं मन्त्रिणां तत्सम्बन्धिनां कृते वा सुरक्षिताः। दैन्याभावपीडिता जनता तु दिल्लीमागन्तुं रेलयानटिकटक्रयोचितं भरण्यराशिमपि न विन्दते। कियन्तः कर्कटरोगग्रस्ताः पामरजना डॉइल्सिसमाध्यमेनोपचरिताः? कियन्तो वा शासनेन सदयं विदेशान् प्रेषिताः? अये भद्र! सामान्य जनता तु कीटपिपीलिकेव जीवति। प्राणाः केवलं दुश्चरित्रराजनेतृणां रक्ष्यन्ते शासनव्ययैः न खलु कलासाहित्यसंगीतधर्मसंस्कृतिसमुन्नेतृणाम्।

यावता व्ययेन प्रतिमासं मन्त्रिवर्यस्य अल्सेशियनजातीयः कुक्कुरः पोष्यते तावद्धनाभाववशादेव कस्यचिद् दरिद्रकुटीरस्य वंशदीपो निर्वाणमवाप्नोति। किमिद नानुभूतवानसि?

दरिद्रगृहे समुत्पन्ना अपि जना निर्वाचनजयिनो मन्त्रिपदमवाप्य सर्वं विस्मरन्ति। अत्रागत्य तेऽपि कुसुमकोमला जायन्ते। राजतन्त्रं स्याल्लोकतन्त्रं वा। दीनबन्धुरेव दीनानामेकमात्रबन्धु। न पुनर्विधायकः सांसदो मन्त्री वा। तदलमत्रौषधालयनिर्माणेन। ग्रामवैद्य एव दरिद्राणां रोगं हरिष्यति। पुरोहितस्य मन्त्रभस्मनैव तेषामर्भका रोगमुक्ता जायन्तेस्म, सम्प्रत्यपि भविष्यन्ति।[243]

उपर्युक्त अनुच्छेदों में अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत ऐतिहासिक एकाङ्किकयों के प्रतिपाद्य का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। अब समीक्षात्मक दृष्टि से उन पर अपेक्षित विचार किया जा रहा है।

दशरूपककार आचार्य धनंजय ने नाटक की कथावस्तु को तीन प्रकार का माना है - प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र।

- प्रख्यात कथा उसे कहते हैं जो यथावत् घट चुकी हो, इसी को ऐतिहासिक भी कहते हैं।[244]
- उत्पाद्य कथा वह है जो कवि के द्वारा स्वयं उत्पन्न की गई हो। इसी को काल्पनिक भी कहा जा सकता है।[245]
- मिश्र कथा उसे कहते हैं जिसमें इतिहास और कल्पना का मंजुल समन्वय हो।[246]

इस दृष्टि से विचार करने पर अभिराज राजेन्द्रमिश्र के समस्त ऐतिहासिक एकाङ्की प्रायः मिश्र कोटिक सिद्ध होते हैं। यद्यपि इन समस्त एकाङ्किकयों की मूल कथावस्तु प्रकृत्या विशुद्ध ऐतिहासिक है। उपलब्ध इतिहास में कवि ने तनिक भी परिवर्तन नहीं किया है परन्तु एकाङ्की को शिक्षाप्रद एवं आदर्शोन्मुख बनाने की दृष्टि से कवि ने उनमें अपनी ओर से भी कुछ कल्पित अवश्य किया है। सम्भवतः इसलिए कि साहित्य रचना के उद्देश्य -**"रामादिवत् वर्तितव्यम् न रावणादिवत्"** का आदर्श साकार हो सके। इतिहास तो इतिहास ही होता है, यदि कोई

---

[243]. वही, पृ. 117-118
[244]. प्रख्यातमितिहासाद् - दशरूपकम्
[245]. उत्पाद्यं कविकल्पितम् - वही।
[246]. मिश्रं च संकरात्ताभ्याम् - वही

घटना लोमहर्षक है, रक्तपात से परिपूर्ण है, अनुचित है, पापमय है तथा लोकमंगल का नाश करने वाली है तो भला उसमें क्या परिवर्तन हो सकता है, वह तो वैसी ही रहेगी। परन्तु प्रतिभाशाली कवि अपनी कल्पनाशक्ति से उस कथा में भी एक ऐसा निखार पैदा कर देता है जो लोक के लिए अनुकरणीय आदर्श बन जाता है। उदाहरण के लिए इतिहास आलमगीर औरंगजेब को मदिरा का विरोधी, प्रेम-प्यार की भावना से शून्य, असहृदय तथा नीरस प्रवृत्ति का व्यक्ति सिद्ध करता है परन्तु जब नाटककार अपनी कल्पना के बल पर उसी आलमगीर को अपनी प्रणयिनी की प्रीति-रक्षा के लिए मदिरा का चषक उठाते हुए कल्पित कर लेता है तो समाज के समक्ष आलमगीर एक नए ही विलक्षण रूप में प्रस्तुत हो उठता है।

इसी तरह **देहलीपरिदेवनम्** एकाङ्की में भी अभिराज मिश्र ने यथावत् चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने भारतवर्ष में हुए लोमहर्षक संहार और राजनीति के दुष्परिणामों का नग्न-सत्य प्रस्तुत किया है। इस एकाङ्की में मिश्र जी ने दिल्ली को पाण्डवों की राजधानी 'इन्द्रप्रस्थ' के रूप में तो कहीं हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान तथा मुस्लिम शासकों की राजधानी के रूप में यथावत् चित्रित किया है। इस तरह का चित्रण करने के लिए न जाने कितने पात्रों की आवश्यकता पड़ती परन्तु अभिराज मिश्र ने केवल स्वयं दिल्ली के माध्यम से तथाकथित घटनाओं को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। स्वयं दिल्ली ही एक ऐसी पात्र हो सकती है जिसने पाण्डवकाल से लेकर आज तक की राजनीति के दुष्परिणामों को झेला है। इसलिए अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने दिल्ली के माध्यम से एकाङ्की को प्रस्तुत किया है।

अभिराज राजेन्द्रमिश्र के ऐतिहासिक एकाङ्कियों का यही सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है कि उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं को उनके नग्न यथार्थ रूप में नहीं प्रस्तुत किया है बल्कि 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की सिद्धि के लिए उस इतिहास को भी आदर्श के कंचुक में लपेट कर प्रस्तुत किया है।